REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 14 | ISSUE - 9 | JUNE - 2025

"मोहन राकेश के नाटकों में स्त्री–पुरुष के बदलते संबंध का अध्ययन"

रामलाल प्रजापति
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)

डॉ. राजेन्द्र कुमार द्विवेदी
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)

सारांश –

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में मोहन राकेश एक ऐसे नाटककार के रूप में उभरे, जिन्होंने नाट्य–साहित्य को यथार्थवादी दृष्टिकोण से एक नई दिशा प्रदान की। उन्होंने पारंपरिक कथ्य को तोड़ते हुए आधुनिक समाज की जटिलताओं, मानसिक संघर्षों और संबंधों की उलझनों को अत्यंत गहराई और संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया। मोहन राकेश का सृजन संसार विशेष रूप से स्त्री–पुरुष संबंधों की मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जटिलताओं का आईना है, जिसमें यथार्थ का बोध स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। भारतीय समाज में स्त्री–पुरुष संबंधों की परंपरा एक सांस्कृतिक अनुशासन और सामाजिक ढाँचे में बंधी हुई रही है। पुरुष को परिवार और समाज में निर्णायक भूमिका में देखा गया है जबकि स्त्री को परंपरागत रूप से त्याग, सहनशीलता और अनुकूलन की मूर्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया। लेकिन स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद और विशेष रूप से बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, स्त्रियों में आत्मचेतना और स्वतंत्र अस्तित्व की भावना का विकास हुआ। इस परिवर्तित सामाजिक यथार्थ को मोहन राकेश ने गहराई से अनुभव किया और अपने नाटकों में इसे सजीव रूप से प्रस्तुत किया।

मुख्य शब्द – भारतीय समाज, स्त्री–पुरुष संबंध, सांस्कृतिक, अनुशासन एवं समाज।

प्रस्तावना –

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसके संबंधों का जाल उसके सामाजिक जीवन का आधार होता है। इन संबंधों में स्त्री और पुरुष का संबंध सबसे मूलभूत और निर्णायक माना जाता है। यह संबंध केवल जैविक या भावनात्मक नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, मानसिक और दार्शनिक स्तर पर भी बेहद जटिल और परिवर्तनशील होता है। समय, समाज, शिक्षा, संस्कृति और आर्थिक स्थितियाँ इस संबंध की प्रकृति को निरंतर प्रभावित करती रही हैं।

परंपरागत समाज में स्त्री–पुरुष संबंध स्पष्ट रूप से पितृसत्तात्मक ढाँचे में ढले हुए थे। पुरुष को प्रभुत्व और स्त्री को अधीनता की भूमिका दी गई थी। स्त्री की भूमिका सीमित कर दी गई थी – वह घर की

चारदीवारी में बंधी हुई, सेवा और समर्पण की प्रतीक मानी जाती थी, जबकि पुरुष समाज, निर्णय और सत्ता का केंद्र था। इस असमानता पर संस्कृति, धर्म और सामाजिक व्यवस्था की मुहर लगी हुई थी। लेकिन जैसे–जैसे समाज में शिक्षा, औद्योगीकरण, स्त्री–जागरूकता, नारी आंदोलन और आधुनिक सोच का विकास हुआ, स्त्री–पुरुष संबंधों की संरचना में भी व्यापक परिवर्तन आने लगे। स्त्री ने अपनी अस्मिता, अधिकार और स्वतंत्रता के लिए आवाज उठानी शुरू की। अब वह केवल संबंधों को निभाने वाली भूमिका तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह संबंधों में समानता, संवाद और सम्मान की अपेक्षा करने लगी। इसी के समानांतर, पुरुष की भूमिका में भी परिवर्तन आया – वह अब सत्ता का अकेला धारक नहीं रहा, बल्कि उसे स्त्री को साझेदार के रूप में स्वीकारने की आवश्यकता महसूस हुई।

इस परिवर्तनशील परिप्रेक्ष्य में आधुनिक साहित्य और विशेषकर हिन्दी नाटक, स्त्री–पुरुष संबंधों के इस नए स्वरूप को गहराई से उजागर करता है। मोहन राकेश जैसे नाटककारों ने स्त्री–पुरुष के पारंपरिक संबंधों की सीमाओं को तोड़ा और नए सामाजिक यथार्थ के अनुरूप उनके मानसिक द्वन्द्व, असमंजस, आकांक्षाओं और असंतोष को मंच पर प्रस्तुत किया। उनके नाटकों में स्त्री केवल प्रेमिका या पत्नी नहीं, बल्कि एक जिज्ञासु, संघर्षशील, निर्णयक्षम और आत्म–सम्मान की खोज में लगी हुई स्वतंत्र चेतना बनकर उभरती है।

स्त्री–पुरुष संबंध अब केवल जैविक या भावुक न होकर सामाजिक विमर्श का केंद्र बन चुका है। यह संबंध आज द्वन्द्व, संवाद, समझ और संघर्ष के दौर से गुजर रहा है, जिससे न केवल व्यक्तिगत जीवन प्रभावित हो रहा है, बल्कि समाज, साहित्य और संस्कृति में भी नई दृष्टि का जन्म हो रहा है।

विश्लेषण –

आज की युवा पीढ़ी किसी भी प्रकार का प्रतिबंध नहीं मानती और न कोई क्षेत्र अपने लिए निषिद्ध मानती है। अल्प वयस्क नीरा भी युवतियों की तरह अथवा बुजुर्गों की तरह जीवन व्यतीत करना चाहती है। नीरा अब्दुल्ला की इस बात से नाराज हो जाती है कि वह उसे एक बच्ची मानता है। इस संदर्भ में अब्दुल्ला एवं नीरा के ये संवाद देखने योग्य हैं–

अब्दुल्ला – यह बहुत बुरी बात है, मिस्टर पण्डित! इस तरह एक बच्चे के सामने आप .....
नीरा – बच्चे के सामने से तुम्हारा मतलब? बच्चा यहाँ कौन है? मैं? मैं बच्चा नहीं हूँ।
अब्दुल्ला – नहीं तू बच्चा नहीं है, मैं बच्चा हूँ। यह तो ठीक है?
नीरा – मुझसे इस तरह बात करने की जरूरत नहीं। तू बच्चा नहीं मैं बच्चा हूँ। तेरा ख्याल है कि मैं इस तरह की बात समझती नहीं।[1]

इसी प्रकार नीरा के विषय में अयूब कहता है कि, लड़कियाँ बहुत जल्दी नाराज हो जाती हैं। खास तौर से छोटी उम्र की लड़कियाँ। नहीं? परंतु नीरा रीता के इस कथन से अभी चौदह की तो वह हुई नहीं, फिर अभी से उसे अपने को बड़ी समझने का शौक क्यों चर्रा आया है? एकाएक बिगड़ खड़ी हुई, और गुस्से में पाँव पटकती वहाँ से चली गई। यहाँ नीरा दर्शक पाठक को 'आधे अधूरे' की किन्नी का स्मरण कराती है।

विवेच्य नाटक में पात्रों के संबंध खोखलेपन पर आधारित है। इसलिए मोहन राकेश की 'पैर तले की जमीन' को कमलेश्वर जल प्लावन के द्वारा बहा देना चाहते हैं। क्लब के सदस्य अपने व्यक्तिगत जीवन से पूर्णरूपेण पराजित हैं एवं टूटकर वहाँ की सदस्यता ग्रहण करते हैं। मानवीय मूल्यों का इतना विघटन हो चुका है कि वे अपनी पत्नी से अवैध संबंध रखने वाले व्यक्ति के साथ संबंध रखना हेय नहीं समझते। प्रस्तुत नाटक में पण्डित एक ऐसा ही पात्र है। पण्डित की पत्नी पर भी उसके स्थान पर झुनझुनवाला का ही अधिकार है और पण्डित सब कुछ जानता हुआ भी जिंदगी को जहर के घूँट की तरह पीता हुआ मुँह से कुछ नहीं बोलता[2] और बोल भी कैसे सकता है? क्योंकि आर्थिक परवशताओं के कारण एक व्यक्ति दूसरे का इतना गुलाम हो जाता है कि उसका सम्पूर्ण समय उसकी सम्पूर्ण बुद्धि, यहाँ तक कि उसकी पत्नी भी दूसरे के अधीन हो जाते हैं और वह महसूस करते हुए भी महसूस नहीं कर पाता। पण्डित की यही स्थिति प्रेक्षक–पाठक के समक्ष आती है। पण्डित का घर था। पर घर की जिंदगी नहीं थी, बीवी है पर बीवी नहीं है– उसकी तस्वीर औरों के बटुओं में बंद है। (झुनझुनवाला को आग उगलती आँखों से देखता है) महीनों बाहर भटकना... यह और यह हासिल करके

खुश होना चाहना, पर उदास होते जाना... यही मेरा प्राप्य था। पीछे घर में क्या होता था, पता नहीं। एक झूठा खेल। एक दूसरे को विश्वास दिलाते रहने का। कुछ था, जिससे मैं अपनी हर जीत के साथ हारा हुआ महसूस करता था। कुछ था, जिससे मैं हर वक्त भागना चाहता था और एक बार इस झुनझुनवाला के साथ यहाँ आया था, तो भी भागकर... इसी से भागकर, इसी के साथ।[3] अपनी पत्नी के अन्य पुरूष के साथ संबंधों को पण्डित ब्रांडी के नशे में भूल जाना चाहता है।

मोहन राकेश, 'आधे अधूरे' के जगमोहन को ही झुनझुनवाला के रूप में विवेच्य नाटक में प्रस्तुत करते हैं जो यहाँ भी पूँजीपति के प्रतीक के रूप में सामाजिक को दिखलाई देता है। झुनझुनवाला ऐसा चरित्रभ्रष्ट व्यापारी है जो दूसरों की बहिन–बेटियों को ही अपनी अंकशायिनी नहीं बनाता वरन् अपने मित्रों की पत्नीयों को भी नहीं बख्शता। झुनझुनवाला मृत्यु के समय अपने मुखौटे को उतार कर कहता है, मैं आज तक सैंकड़ों जवान लड़कियों के साथ सोया हूँ उनकी मर्जी से नहीं अपनी मर्जी से। अपने दोस्तों के घरों को भी मैंने नहीं छोड़ा। फलस्वरूप झुनझुनवाला अपने नंगेपन को देखने लायक भी नहीं रह गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि झुनझुनवाला परस्त्रीगामी है।[4]

'पैर तले की जमीन' में अयूब समूची नारी की तलाश में इधर–उधर भटकता है। संभवतः मोहन राकेश 'आधे अधूरे' में सम्पूर्ण पुरूष की तलाश के बाद, इस नाटक में सम्पूर्ण नारी की तलाश कर रहे हैं। यह तलाश अयूब के माध्यम से है, मुझे एक औरत चाहिए, औरत जो मौत के खतरे के बावजूद मेरा साथ दे सके। समझे। नहीं समझे कोई बात नहीं।[5] जबकि अयूब स्वयं अपूर्ण एवं कुंठाग्रस्त है। उसके वैवाहिक जीवन में घुटन एवं बिखराव है, जिसको वह संकट में फँसी रीता और नीरा से बलात्कार कर समाप्त करना चाहता है। पत्नी के मधुर संबंध न होने के कारण अयूब असामाजिक व्यवहार का प्रदर्शन करता है। पत्नी के विवाहपूर्व परपुरूष के संबंधों से वह इतना दुःखी है कि पिता और भाई से तो झगड़ता ही है, मोटर एक्सीडेंट में अपनी जान तक गँवाने की नौबत ले जाता है। अयूब और सलमा का वैवाहिक संबंधों के बोझ को ढोता जीवन वर्षों से स्थापित उन वैवाहिक संस्था की निरर्थकता को दिखाता है जो व्यक्ति के जीवन का आधार मानी गई है।[6] स्पष्ट है अयूब और सलमा अपने वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट हैं।

विवेच्य नाटक में मोहन राकेश ने विवाह से पूर्व किए गए प्रेम को अभिशाप के रूप में दर्शाया है। यदि प्रेमी प्रेमिका विवाह बंधन में नहीं बँध पाते तो विवाहपूर्व किया गया प्रेम, वैवाहिक जीवन को विषाक्त कर देता है। 'पैर तले की जमीन' में सलमा विवाह से पहले डॉक्टर से प्रेम करती थी। विवाह के बाद न तो वह सुखी रही न उसका पति अयूब ही। अयूब दोहरी जिंदगी जीते हुए कहता है, जो जिंदगी मैं जी रहा हूँ, वह मेरी अपनी जिंदगी नहीं है मैं चाहे जितने साल उसे ढोता रहूँ फिर भी कभी उसे अपना नहीं सकूँगा। सलमा भी विवाहित जीवन से तंग आकर खुदकुशी के कगार तक पहुँच जाती है। सलमा का विवाहपूर्व प्रेमी डॉक्टर भी सकीना से विवाह कर प्रसन्न नहीं है, जिसकी सूचना अयूब द्वारा मिलती है डॉक्टर अपनी बीवी सकीना को पाकर खुश नहीं हो सका उसी तरह जैसे मैं सलमा से शादी करके। सिर्फ वह अपना खोल बनाए रखना चाहता है, उसका शायद ख्याल है कि उसका खोल किसी को नजर नहीं आएगा। पर किसका खोल किसे नजर नहीं आता? सब एक दूसरे के खोल से वाकिफ हैं, एक दूसरे का खोल उतरते देखना चाहते हैं मगर अपना खोल बनाए रखते हुए, ऐसे खोल में खोखले जीवन को पुरूष मद्यपान व जुए में लगाकर ही जीना चाहता है, तभी तो अयूब, झुनझुनवाला एवं पण्डित क्लब में जाकर ऐसा जीवन व्यतीत करते हैं।[7]

'पैर तले की जमीन' में अयूब अपनी बीवी के अन्य पुरूष के साथ संबंधों को किसी के भी सामने कहने में नहीं झिझकता। वह पण्डित से कहता है, कुछ रिश्ते खराब हैं। मेरे और मेरी बीवी के – हमें कुछ गहरी बाते डॉक्टर से करनी थी। डॉक्टर मेरी बीवी का बचपन का दोस्त है अब समझे कुछ तुम?[8] परंतु न मियाँ–बीवी के रिश्ते में किसी तीसरे को पड़ना भी नहीं चाहिए।[9] परंतु सलमा को यह रूचिकर नहीं कि अयूब सबके सामने चीखकर उन बातों की चर्चा करे जो किसी अन्य के सामने नहीं करनी चाहिए।

अयूब सदैव सलमा को विवाहपूर्व संबंधों का उलाहना देता रहता है, परंतु अयूब स्वयं अपने व्यवहार को नहीं देखता। इसलिए सलमा कहती है, ''मुझे तुम हमेशा चेहरों को लेकर शर्मिंदा कर सकते हो – खुद भी अगर शर्मिंदा हो सकते तो शायद हम एक दूसरे के चेहरों को ज्यादा पहचान पाते – तुमने कल यहाँ उस लड़की रीता के साथ जो कुछ करने की कोशिश की वह भी तो एक चेहरा है उसके लिए भी तुम शर्मिंदा नहीं हो

सकते।''[10] स्पष्टतः अयूब अपने उस अभद्र व्यवहार के लिए शर्मिंदा नहीं है, जिसमे वह मिस रीता दीवान का हाथ गुसलखाने के बाहर पकड़ लेता है और मिस रीता दीवान उसकी जमकर पिटाई करती है।

विवेच्य नाटक में पति का अस्वस्थ्य पत्नी के प्रति लापरवाही का व्यवहार भी दृष्टिगोचर होता है। अयूब की बीवी सलमा पोर्टिको में बेहोश–सी पड़ी हुई है, परंतु अयूब निश्चिन्त होकर, शराब पीते हुए पण्डित से वार्तालाप कर रहा है, जबकि सलमा की देखभाल में अब्दुल्ला और नियामत बड़ी तत्परता से लगे हैं। अयूब को अपनी पत्नी के अस्वस्थ होने का दुःख नहीं, दुःख है तो इस बात का कि वह अपनी पत्नी का सामना डॉक्टर से न करा सका। अयूब की पत्नी अंदर से कब्रिस्तान बन चुकी है, उसका अंतर सा चुका है परिणामस्वरूप अयूब के वैवाहिक जीवन में ऊब ही ऊब है। अयूब अपनी बीवी के अंदर के कब्रिस्तान में से मुर्दे को जीवित करने के लिए एक मनोचिकित्सक के रूप में काम करता है। वह अपनी पत्नी के अंतर को जगाने के लिए नीरा और रीता के साथ ऐसा अभद्र व्यवहार करता है जिससे सलमा जो अब तक अंदर से कब्रिस्तान बन चुकी थी, पुनः सजीव हो उठे। अपने इस व्यवहार से अयूब पत्नी के सोये अंतर को जगाने में सफल हो जाता है।

पत्नी का घर में पति से भले ही झगड़ा हो, परंतु वह यह कभी नहीं चाहती कि उसका पति भूखा रहे। ऐसा ही दृश्य 'पैर तले की जमीन' में प्रेक्षक को देखने को मिलता है, जब अयूब बाढ़ में फँसने के बाद नियामत से खुराक के विषय में पूछता है कि, आखिर रात तो यहाँ काटनी ही है, खाने के लिए कुछ है की नहीं? यह सुनकर सलमा चुपचाप रसोई की तरफ भोजन के प्रबंध के लिए चली जाती है।[11]

'पैर तले की जमीन' ऐसी युवतियों का भी चित्र प्रस्तुत करता है जो अपने अभिभावकों से मिली स्वतंत्रता का पूर्ण लाभ क्लबों में जाकर उठाती है। वह यह नहीं चाहती कि उनके घरवालों को उनकी गतिविधियों का ज्ञान हो। नियामत के यह कहने पर कि, ''मैं तुम्हारे डैडी को टेलिफोन करके यहाँ बुला लेता हूँ, वह तुम्हें यहाँ से ले जाएँगे।'' नीरा तपाक से कहती है, क्यों? डैडी क्यों मुझे आकर ले जाएँ? मैं जब अपने पैरों चलकर यहाँ आ सकती हूँ, तो उसी तरह चलकर यहाँ से जा नहीं सकती?[12] नीरा और रीता ऐसी आधुनिका है जो बाढ़ की सूचना मिलने पर भी घर न जाकर स्वीमिंग पूल में स्नान करना और आधुनिक संगीत सुनना अधिक पसंद करती है।

रीता का मन स्वयं अंदर से शारीरिक संबंध स्थापित करने के लिए आतुर था। अयूब तो ऐसे भोलेपन एवं इंनोसेस के लिए लालयित था ही। उसकी पत्नी सलमा में यह भोलापन और इंनोसेंस विवाह के समय से ही नहीं था, होता भी कहाँ से? क्योंकि उसके विवाह से पहले डॉक्टर से प्रेम संबंध थे। इसी का आस्वाद लेने के लिए वह रीता से बलात्कार करना चाहता है। अयूब सलमा से स्पष्ट कहता है, मैं होश में हूँ सलमा बिल्कुल होश में – दरिया में बह जाने से पहले एक बार पानी यहाँ तक (गले तक) बढ़ जाने से पहले एक बार – मैं उसके भोलेपन के साथ उसकी इंनोसेंस के साथ''[13] रीता से उसकी यह इच्छा पूर्ण नहीं होती, परंतु अयूब नीरा के इंनोसेस एवं भोलेपन का आस्वाद अवश्य ले लेता है। संभोग के बाद नीरा से ठीक प्रकार से चला भी नहीं जा रहा तथा उसे चलते हुए भी नींद आ रही है। जब कि अभी कुछ देर पहले तक वह पूर्णरूपेण स्वस्थ थी। अयूब इंनोसेंस एवं भोलेपन के आस्वाद के बाद सामान्य हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विवाहपूर्व प्रेम संबंध पति–पत्नी के मध्य दरार पैदा करते हैं। समाज में बलात्कार की शिकार वे आधुनिकाएँ ही होती हैं जो अपने परिवार से प्राप्त स्वतंत्रता का अनुचित लाभ उठाती हैं।

मोहन राकेश के नाटकों में चित्रित स्त्री–पुरुष संबंधों के विवेचन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'आषाढ़ का एक दिन' में स्त्री–पुरूष संबंधों को लेकर नाटककार ने तीन जोड़ियाँ बनाई हैं– कालिदास–मल्लिका, कालिदास–प्रियंगुमंजरी और विलोम मल्लिका, इन संबंधों में जुड़े कालिदास, मल्लिका, प्रियंगुमंजरी और विलोम एक दूसरे को कहीं न कहीं शाब्दिक जख्म देते नजर आते हैं। इन संबंधों को लेकर नाटककार ने ऐसी स्थिति का निरूपण किया है कि सभी पात्र एक दूसरे से विभक्त होने की अवस्था में पहुँच जाते हैं। एक अलगाव की स्थिति का चित्रण मोहन राकेश यहाँ करते हैं। 'लहरों के राजहंस' में स्त्री–पुरूष संबंधों को दो कोणों से प्रस्तुत किया गया है – एक तो वर्तमान परिवेश में पति–पत्नी के बदलते संबंध और दूसरे एक कर्मचारी के विषमलिंगी कर्मचारी के प्रति आकर्षणजन्य संबंध। इन संबंधों के चित्रण में प्रतीकों की सहायता भी ली गई है। 'आधे अधूरे' मध्यवर्गीय आधुनिक पति–पत्नी का आख्यान है। इसमे विवाहोपरांत

स्त्री–पुरूष के संबंधों की जहाँ झाँकी प्रस्तुत की गई है, वहाँ युवा पीढ़ी का काम संबंधों की ओर कितना रूझान है यह भी दर्शाया गया है। इसके अतिरिक्त 'बॉस' के अधिनस्थ स्त्री कर्मचारी के साथ संबंधों पर भी प्रकाश डाला गया है। 'पैर तले की जमीन' में विवाहपूर्व आधुनिकाओं के संभावित यौन संबंधों की चर्चा है। इस प्रकार, मोहन राकेश के नाटक प्रेम के साध्य के स्थान पर साधन बनते जाने, स्वार्थ सिद्धी में उसके उत्तरोत्तर माध्यम मात्र बनते जाने की सशक्त व्यंजना करते हैं। इस व्यंजना में पूर्ण पुरूष अथवा पूर्ण नारी की तलाश तो है ही, घर की तलाश भी है और आज अधिसंख्य व्यक्ति घर की इसी तलाश में भटक रहे हैं। अपने इस धरातल पर ये नाटक समसामयिक जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज है उस जीवन का जिसमें शंका, संदेह, विघटन और अविश्वास की मुख्य भूमिका है एवं प्रेम धोखा मात्र है।[14]

उपलब्धि की दृष्टि से इस काल के सबसे समर्थ नाटककार थे मोहन राकेश। राकेश के नाटक जीवन की गहन अनुभूति और शिल्प के वैविध्य प्रयोग पर बल देते दिखाई पड़ते हैं। सच्चाई यह है कि स्वतंत्रता के बाद हिन्दी नाट्य शैली कथ्य और शिल्प से प्रभावित होकर दलित, पीड़ित जनों के पीड़ा और संघर्ष को उजागर करती है। आधुनिक नाटकों के सन्दर्भ में मोहन राकेश की उपलब्धि में यह कहा जा सकता है कि राकेश के नाटकों में मिथक नवयथार्थ विसंगति, लोकतत्व तथा आधुनिक मानव की पारिवारिक, आर्थिक तथा सामाजिक त्रासदी के चित्र नवनाट्य रंगों और नव भंगिमाओं के साथ उभरे हैं, बौद्धिक चिन्तन नये प्रयोग विसंगति और नियति के प्रति जागरुकता ही मोहन राकेश के नाटकों के कथ्य और शिल्प की विशेषता मानी जा सकती है। पारिवारिक विघटन और सभी पुरुष सम्बन्धों के ठंडेपन का नाटक मोहन राकेश के आधुनिक नाट्य दौर से प्रारम्भ होता है। उन्होंने स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के विरोधाभाव और आत्म प्रवंचना का सुन्दर चित्रण किया है।

कथ्य और शिल्प में बहुत सफल नाटककार कहे जा सकते हैं नाट्य शिल्प की दृष्टि से चिन्तन करने पर यह स्पष्ट होता है कि मोहन राकेश के स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के नाटक एक प्रकार से सामाजिक चेतना के ही अंग हैं। सामाजिक चेतना के वहीं नाटक अग है। सार्थक हैं जो सामाजिक यथार्थ और राजनैतिक चित्र. को चित्रित करते हैं।

नाटककार की ईमानदारी यह है कि उन्होंने अपने सीमित नाटक संसार को अपने अनुभव क्षेत्र को बिना किसी लागलपेट या आड़ के बिना किसी काम्पलेक्स के युगबोध को दृष्टि से प्रस्तुत किया है। उसे व्यर्थ फैलाव या विस्तार देकर भ्रम पैदा करने की कोशिश नहीं की है। हिन्दी नाटक और रंगमंच के सन्दर्भ में राकेश के व्यक्तित्व और उनके नाटकों का महत्व निश्चित रूप से प्रासंगिक लगता है। नाटक और रंगमंच की मौलिकता और सृजनात्मकता को अनुभव करने की शुरूआत उनके आषाढ़ के एक दिन से हुई थी।

1958 से 1969 के बीच का समय आषाढ़ का एक दिन और आधे–अधूरे तक का समय हिन्दी नाटक और रंगमंच को बहुत आगे ले जाता है और युगबोध की दृष्टि से समाज की सारी जड़ता को तोड़कर नई सम्भावनाओं को उजागर करता है। राकेश ने भारतीय नाट्य साहित्य को अपनी ही भिन्न संवेदना से समृद्ध किया है। बड़ी–छोटी बहुत सी नाट्य संस्थाओं को बनाने में उन्हीं के नाटकों का हाथ है, रंग कला और नाट्य कला का सम्बन्ध राकेश ने ही जोड़ा है। राकेश के नाटकों को पढ़ लेने के बाद कुछ बड़ी दिलचस्प बातें सामने आती हैं जो स्वयं राकेश को उनके व्यक्तित्व रूप को और नाटककार रूप को जानने समझने में सहायक भी होती है और कुछ सवाल भी पैदा करती है। यह कितना सही है कि उनके हर नाटक में बीज नाटकों में भी स्त्री–पुरुष सम्बन्ध को, उसकी एक रसता और जटिलता को किसी न किसी स्तर पर उठाया गया है 'आधे–अधूरे' में वह सम्बन्ध और भी जटिल हो गये हैं। आपसी सम्बन्धों की सही परिभाषा खोजने की कोशिश अगर उनके 'अंतराल' उपन्यास में है तो 'अंधेरे बन्द कमरे', 'एक और जिन्दगी' और नाटकों में उनकी जटिलता और टकराहट मुखर हुई है।

सम्बन्धहीन संबंधों से वितृष्णा उनके पूरे साहित्य में किसी न किसी रूप में लक्षित होती है। इस वितृष्णा और जटिलता का कोई समाधान नहीं है, इसलिए केवल छटपटाहट और एक अनवरत तलाश नामहीन सम्बन्धों की खोज उनके पूरे साहित्य में ही साफ पहचानी जा सकती है। यह उनके नाटकों का भी एक पक्ष है लेकिन उनके नाटकों को आज के अनुभव से जोड़कर भी देखें तो पात्रों की दृष्टि से नाटकों की कथावस्तु पुरुष पात्रों से ही तीनों नाटक जुड़े हुए हैं लेकिन क्या कारण है कि नाटकों में उनके स्त्री पात्र ही मुख्य और केन्द्रीय पात्र बन जाते हैं और पुरुष पात्र उनकी तुलना में अन्त तक पहुंचते–पहुंचते दुर्बल मनः स्थिति वाले दिखाई देते हैं।

डॉ. उर्मिला मिश्र इस विवाद में पड़ना नहीं चाहती कि स्त्री पात्र पर्याप्त महत्वपूर्ण है या पुरूष पात्र ! वे अपना एक अलग दृष्टिकोण लेकर मोहन राकेश की कलाकृतियों का मूल्यांकन करती हैं। इनका समग्र मूल्यांकन दो मुद्दों पर आधारित है।

1. राकेश की कलाकृतियाँ आधुनिकता से ज्यादा रोमँटिक हैं और
2. राकेश का साहित्य अपने निजी अनुभव का अविष्कार है।

इसमें दूसरे मुद्दे पर साधारणतः सभी समीक्षकों की सहमति हमें देखने को मिलती है लेकिन पहला मुद्दा सर्वमान्य न होकर एक विशिष्ट दृष्टिकोण का द्योतक है।

वे कहती हैं, ''मोहन राकेश आधुनिक हिंदी साहित्य के एक अत्यंत संवेदनशील कलाकार हैं। वे समकालीन लेखकों और बुद्धिजीवियों के बीच ऐसे लेखक थे जिन्होंने पुरानी मान्यताओं, रूढियों और विचारों पर तीखा प्रहार किया है। आज का आदमी आसपास के अनेक सवालों से टकराता है, टूटता और निर्वासित विरक्ति और पलायन होता रहता है। क्योंकि मनुष्य वैज्ञानिक उपलब्धियों को अपने जीवन में जाने अनजाने स्वीकार कर रहा है और वैज्ञानिक विचारधारा ही आधुनिकता की धारणा बन गई हैं, अतः आधुनिकता ने वार्तालाप के दायरे को नितांत सीमित और संकुचित कर दिया है। व्यक्ति अकेलेपन से निकलने और परिवेश से जुड़ने के लिए छटपटा रहा है। वह जीने के लिए नए संबंधों और नई मान्यताओं की तलाश करता है, ताकि अपनी खोई हुई दिशा को प्रकाशित कर सके और जीवन को नए संबंधों और संदर्भों से जोड़ सके। राकेश आधुनिक कम रोमँटिक अधिक थे। वे जीवन में सवाल उठा सकते थे, लेकिन उसका फतवा कहीं नहीं देते थे। राकेश ने जीवन में जो कुछ भोगा वही लिखा। उनकी रचनाओं में आधुनिकतम चुनौतियों से उत्पन्न होने वाले अंतर्द्वंद्वो और यंत्रणाओं की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है। आधुनिक साहित्य में विशेषता कहानी और नाटक के संबंध में उनके प्रयोग सर्वथा नवीन है। अपनी रचनाओं के वैशिष्ट्य के कारण राकेश का बहुमुखी व्यक्तित्व केवल कहानी, उपन्यास और नाटक के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि आलोचना के क्षेत्र में भी अभिव्यक्त हुआ है।''[15]

राकेश अपने निजी जीवन में रोमँटिक जरूर होंगे लेकिन ये जरूरी नहीं कि उनके सभी नाटक और एकांकी रोमँटिझम से प्रेरित हों और वैसे हैं भी नहीं! कलाकृति में जहाँ स्त्री–पुरूष संबंध का ब्यौरा आया हो वहाँ रोमँटिझम का मुद्दा आना अनिवार्य हो सकता है। यद्यपि डॉ. उर्मिला मिश्र राकेश की कलाकृतियों को आधुनिकता से ज्यादा रोमँटिक मानती है। उनका समग्र मूल्यांकन राकेश की कलाकृतियाँ और आधुनिकता इस विषय के दायरे में अध्यायित हुआ है।

चर्चा जब रोमँटिझम को लेकर चल रही है तो देखते हैं इस विषय से संबंधित डॉ. नरेंद्रनाथ त्रिपाठी का क्या कहना है। ''मोहन राकेश के नाटक प्रेम के साध्य के स्थान पर साधन बनते जाने, स्वार्थ सिद्धि में उसके उत्तरोत्तर माध्यम मात्र बनते जाने की सशक्त व्यंजना करते हैं। इस व्यंजना में पूर्ण पुरूष अथवा पूर्ण नारी की तलाश तो है ही, घर की तलाश भी है, और आज अधिसंख्य व्यक्ति घर की इसी तलाश में भटक रहे हैं। अपने इस धरातल पर ये नाटक समसामयिक जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज है। उस जीवन का जिसमें शंका, संदेह, विघटन और अविश्वास की मुख्य भूमिका है एवं प्रेम धोखा मात्र है।''[16]

त्रिपाठीजी का कथन अधिकांश मात्रा में सही है क्योंकि राकेश के पुरूष पात्र घर की तलाश में भटकते, नजर आते हैं। इनकी दृष्टि से प्रेम का मुद्दा गौण है।

डॉ. द्विजराम यादव मोहन राकेश के नाटकों के तरफ, समाज पर होने वाले परिणामों की दृष्टि से देखते हैं, साथ ही साहित्य पर जो प्रभाव पड़ा है, इसके बारे में भी अपना वक्तव्य देते हैं। ''मोहन राकेश का संपूर्ण साहित्य जहाँ एक ओर समाज की असलियत व्यक्त करता है, हिंदी साहित्य में एक नया क्रांतिकारी मोड़ उपस्थित करता है, नई प्रयोगधर्मिता आरंभ करता है, वहीं दूसरी ओर मोहन राकेश के पारिवारिक और व्यक्तिगत जीवन का कच्चा चिट्ठा भी पेश करता है।''[17] यादवजी के इस विचार पर आलोचकों की आम सहमति दिखाई देती है।

समकालीन बोध की दृष्टि से 'आधे अधूरे' में मानवीय संबंधों और जीवन मूल्यों में आ रहे सतत बिखराव और टूटन को नाटकीय आयाम दिया गया है। आज की यांत्रिक मानसिकता, अंतः बाह्य दबाव, आर्थिक विषमता, यौनाचार की स्वच्छंद प्रवृत्ति ने ऐसी स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है कि आज का मानव अपने

अधूरेपन से संत्रस्त, विवश और वितृष्ण हो गया है। इसी तरह 'पैर तले की जमीन' नाटक भी समकालीन बोध का एक सशक्त प्रयास है, जिसके नूल में अस्तित्ववादी चिंतन है। संक्षेप में डॉ. घनानंद शर्मा की दृष्टि से मोहन राकेश की नाट्य–कृतियों के कथानक भिन्न है लेकिन सृजन–बोध का बिंदु एक ही है।

डॉ. चमनलाल गुप्ता और कमलेश्वर ऐसे दो समीक्षक हैं जिन्होंने न केवल मोहन राकेश के नाट्य साहित्यों का अध्ययन किया बल्कि समग्र साहित्य के अध्ययन के साथ ही 'मोहन राकेश की डायरी' का भी अध्ययन किया। डॉ. गुप्ता राकेश को मानवीय संबंधों का बेलाग चितेरा मानते हैं। राकेश के साहित्य में जिंदगी का जो रूप अंकित है वह काल्पनिक न होकर उनके अनुभूत सत्य का आईना मात्र है। जिस प्रकार के मानवीय संबंधों को उन्होंने देखा, भोगा और चाहा वैसा ही चित्रित किया। साहित्य के माध्यम से अपना कोई विशिष्ट इमेज बनाने के लिए उन्होंने कोई समझौता नहीं किया और अपने साहित्य को भोगे हुए यथार्थ के निकट ही रखा। उनकी डायरी उनके अंतरंग जीवन की झांकी प्रस्तुत करती है।[18]

कमलेश्वर के शब्दों में, राकेश लगातार संबंधों के विविध आयामों को अपनी रचनाओं में खोजता और विश्लेषित करता रहा है, लेकिन उसकी डायरियाँ अपने साथ अपने संबंधों की खोज का जरिया रही है! राकेश के संबंध राकेश के साप्ताहिक 'इमेज' के साथ बहुत संतुलित थे। डायरी के बारे में कमलेश्वर कहते हैं, ''लेखक का अपना और अपने हाथों किया हुआ यह पोस्ट मार्टम है।''[19]

डॉ. माधव सोनटक्के मोहन राकेश के नाटकों के अध्ययन के समय 'व्यक्तित्व की स्वतंत्रता' को अहम् मानते हैं। इनका कहना है कि मोहन राकेश भी साहित्यकार के रूप में कलाकार की स्वतंत्रता के पक्षपाती रहे हैं।

मोहन राकेश आज की तारीख में भी विशाल जनसमुदाय को प्रभावित करने में सफल हुए हैं। लेकिन मुझे लगता है कि नारी पुरूष संबंधों के विषय में उन्होंने जरूरत से ज्यादा गहराई से विचार किया है क्योंकि उनका कथ्य प्रायः स्त्री और पुरूष संबंधों के दायरों में ही केंद्रित होकर रह गया है। जिससे नाटककार मोहन राकेश के नाटक कुछ हद तक सीमित हो जाते हैं। ऐसा लगता है कि वे सदैव पुरूष को नारी द्वारा शोषित दिखाकर सहानुभूति अर्जित करना चाहते हैं। उनके पात्रों की रचना पद्धति इसलिए आक्षेपार्थ है कि वे यथार्थ का सामना किए बिना पलायनवाद में विश्वास करते हैं।

निष्कर्षः

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मोहन राकेश के नाटकों में स्त्री–पुरुष संबंध केवल रोमांटिक प्रेम तक सीमित नहीं रहते, बल्कि वे मानव अस्तित्व, अस्मिता, स्वतंत्रता, और सामाजिक अपेक्षाओं से टकराते हुए एक व्यापक यथार्थ की अनुभूति कराते हैं। स्त्रियाँ अब केवल प्रेमिका, पत्नी या माँ की भूमिका में नहीं हैं, बल्कि वे चेतनशील, जिज्ञासु, निर्णय लेने वाली, और कई बार विद्रोही भी हैं। पुरुष पात्र भी परंपरागत वर्चस्व से हटकर असमंजस, असंतोष और असफलताओं से घिरे नजर आते हैं।

संदर्भ –

1 मोहन राकेश – पैर तले ज़मीन, पृष्ठ 34
2 डॉ. पुष्पा बन्सल – मोहन राकेश का नाट्य साहित्य, पृष्ठ 65
3 मोहन राकेश – पैर तले ज़मीन, पृष्ठ 106
4 डॉ. नरेन्द्रनाथ त्रिपाठी – साठोत्तर हिन्दी नाटकों में स्त्री पुरुष संबंध, पृष्ठ 153
5 मोहन राकेश – पैर तले ज़मीन, पृष्ठ 80
6 डॉ. रीता कुमार – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में, पृष्ठ 316
7 डॉ. नरेन्द्रनाथ त्रिपाठी – साठोत्तर हिन्दी नाटकों में स्त्री पुरुष संबंध, पृष्ठ 154
8 मोहन राकेश – पैर तले ज़मीन, पृष्ठ 41
9 मोहन राकेश – पैर तले ज़मीन, पृष्ठ 42
10 मोहन राकेश – पैर तले ज़मीन, पृष्ठ 68

11 मोहन राकेश – पैर तले ज़मीन, पृष्ठ 73
12 मोहन राकेश – पैर तले ज़मीन, पृष्ठ 26
13 मोहन राकेश – पैर तले ज़मीन, पृष्ठ 85
14 डॉ. नरेन्द्रनाथ त्रिपाठी – साठोत्तर हिन्दी नाटकों में स्त्री पुरुष संबंध, पृष्ठ 158
15 डॉ. उर्मिला मिश्र – आधुनिकता और मोहन राकेश, मुखपृष्ठ
16 डॉ. नरेन्द्रनाथ त्रिपाठी – साठोत्तर हिन्दी नाटकों में स्त्री पुरुष संबंध, पृष्ठ 158
17 डॉ. द्विजराम यादव – मोहन राकेश के नाटक, पृष्ठ 38
18 डॉ. चमनलाल गुप्ता – मोहन राकेश के कथा साहित्य में मानवीय संबंध, पृष्ठ 18
19 डॉ. चमनलाल गुप्ता – मोहन राकेश के कथा साहित्य में मानवीय संबंध, पृष्ठ 18